

(2013) 17 एस.सी.आर. 296

राज्य बिहार एवं अन्य

बनाम

अरबिंद

(2013 की दीवानी अपील संख्या 6265)

26 जुलाई, 2013

[अनिल आर. दवे तथा दीपक मिश्रा, न्यायमूर्ति]

सेवा कानून:

भरण-पोषण भत्ता — भुगतान न किया जाना — इस आधार पर कि विभागीय कार्यवाही के दौरान दंडितकर्मि मुख्यालय पर नहीं रहा — औचित्य — निर्णय: निलंबित कर्मचारी भरण-पोषण भत्ते का हकदार होता है — वर्तमान मामले में ऐसा कोई नियम नहीं है जो यह कहे कि भरण-पोषण भत्ता पाने के लिए कर्मचारी का मुख्यालय पर रहना अनिवार्य है — भरण-पोषण भत्ता जारी करने का निर्देश।

अनुशासनात्मक कार्यवाही — आरंभ — दंडितकर्मि द्वारा बार-बार निवेदन के बावजूद भरण-पोषण भत्ता न मिलने के कारण पैसे की तंगी से मुख्यालय छोड़ना — एकतरफा कार्यवाही — सेवा से बर्खास्तगी — रिट याचिका खारिज — रिट अपील में उच्च न्यायालय ने बर्खास्तगी का आदेश रद्द किया और 50% वेतन, पूरा भरण-पोषण भत्ता देने तथा नोटिस देकर नई विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने का निर्देश दिया — अपील पर — निर्णय: उच्च न्यायालय का आदेश उचित था — दंडितकर्मि ने भरण-पोषण भत्ते का दावा एक निश्चित अवधि तक सीमित कर दिया है, इसलिए उस सीमा के अनुसार एक लाख रुपये निर्धारित समय में देने का निर्देश।

प्रतिवादी-कर्मों को निलंबित कर दिया गया था और उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही प्रारंभ की गई थी। उसे इन कार्यवाहियों के दौरान मुख्यालय पर रहने को कहा गया था। अनेक निवेदनों के बावजूद उसे भरण-पोषण भत्ता नहीं दिया गया, जिसके कारण वह आर्थिक तंगी से मुख्यालय छोड़ने पर विवश हुआ। उसने विभागीय कार्यवाही में भाग नहीं लिया और एकतरफा कार्यवाही के परिणामस्वरूप उसे सेवा से हटा दिया गया। प्रतिवादी ने बर्खास्तगी आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका दायर की, जिसे एकल न्यायाधीश ने खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने निर्णय पलटते हुए राज्य को 50% बकाया वेतन, पूरा भरण-पोषण भत्ता देने और नए सिरे से विभागीय कार्यवाही नोटिस देकर प्रारंभ करने का निर्देश दिया। वर्तमान अपील वहीं से उत्पन्न हुई है।

अपील का निपटारा करते हुए न्यायालय ने कहा:

यह विधि में स्थापित है कि निलंबन का आदेश किसी कर्मचारी की सेवा समाप्त नहीं करता। वह वेतन का पात्र तो होता ही है, साथ ही भरण-पोषण भत्ते का भी हकदार होता है। वर्तमान मामले में ऐसा कोई नियम नहीं है कि निलंबित कर्मचारी भरण-पोषण भत्ता पाने के लिए मुख्यालय पर ही रहे। प्रतिवादी ने अपनी आर्थिक स्थिति और मुख्यालय पर न रह पाने की मजबूरी स्पष्ट रूप से बताई थी। यह राज्य का भी मामला नहीं है कि उससे कोई प्रमाण-पत्र माँगा गया हो जिसे उसने न दिया हो। पूरी बात केवल इस आधार पर टिकाई गई कि कर्मचारी मुख्यालय पर नहीं था इसलिए भरण-पोषण भत्ता नहीं मिला। इसलिए, यदि पूर्वाग्रह के सिद्धांत को भी लागू किया जाए तो यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी पूर्णतः असमर्थ हो गया था और उसे विभागीय कार्यवाही में हिस्सा न ले पाने से गंभीर क्षति पहुँची। इस पृष्ठभूमि में दंडादेश को रद्द करने में उच्च न्यायालय की कोई त्रुटि नहीं है।

[परिच्छेद 9, 15, 18] [302-ई-एफ; 306-ए; 307-ई-एफ]

खेम चंद बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1963 एससी 687: 1963 सप्ली.

एससीआर 229; मध्य प्रदेश राज्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, एआईआर 1977 एससी 1466: 1977 (2) एससीआर 555; ओ.पी. गुसा बनाम भारत संघ एवं अन्य, एआईआर 1987 एससी 2257: 1988 (1) एससीआर 27; फकीरभाई फूलाभाई सोलंकी बनाम प्रसीडिंग ऑफिसर एवं अन्य, एआईआर 1986 एससी 1168; कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड एवं अन्य, एआईआर 1999 एससी 1416: 1999 (2) एससीआर 257; जगदम्बा प्रसाद शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 2000 एससी 2806: 2000 (7) एससीसी 90; अनवरून निशा खातून बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2002) 6 एससीसी 703; इंद्र भानु गौड़ बनाम समिति, मैनेजमेंट ऑफ एम.एम. डिग्री कॉलेज एवं अन्य, (2004) 1 एससीसी 281: 2003 (5) सप्ली. एससीआर 327; गणेश राम बनाम बिहार राज्य, (1995) 2 पट एलजेआर 690; यू.पी. स्टेट टेक्सटाइल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम पी.सी. चतुर्वेदी एवं अन्य, (2005) 8 एससीसी 211: 2005 (3) सप्ली. एससीआर 849 — जिन पर भरोसा किया गया।

2. 1.1.1996 से लेकर निलंबन की तिथि 26.6.1997 तक का पूरा वेतन दिया नहीं गया है, और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा इसे देने का जो निर्देश दिया गया है, उसमें कोई गलती नहीं पाई जा सकती। जहाँ तक 25.6.1997 से 13.9.2000 तक के भरण-पोषण भत्ते का प्रश्न है, उसे वेतन के 50% की दर से दिया जाना है। उत्तरदाता ने 13.9.2000 से लेकर उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की तिथि तक के भरण-पोषण भत्ते के अपने दावे को ₹1,00,000/- (एक लाख रुपये मात्र) तक सीमित किया है। उपर्युक्त राशि का गणना कर उत्तरदाता को छह सप्ताह के भीतर भुगतान किया जाएगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि उच्च न्यायालय के आदेश के बाद की अवधि को विभागीय कार्यवाही समाप्त होने तक निलंबन अवधि माना जाएगा तथा भरण-पोषण भत्ता नियमों के अनुसार दिया जाएगा। कार्यवाही राशि जारी होने के बाद प्रारम्भ होगी। [कंडिका 18] [307-एफ-एच; 308-ए-बी]

नज़ीर संदर्भ:

1963	सप्लिमेंट	एससीआर	229	—	कंडिका	9	पर	भरोसा	किया
1977	(2)	एससीआर	555	—	कंडिका	9	पर	भरोसा	किया
1988	(1)	एससीआर	27	—	कंडिका	10	पर	भरोसा	किया
एआईआर	1986	एससी	1168	—	कंडिका	11	पर	भरोसा	किया
1999	(2)	एससीआर	257	—	कंडिका	12	पर	भरोसा	किया
2000	(7)	एससीसी	90	—	कंडिका	13	पर	भरोसा	किया
(2002)	6	एससीसी	103	—	कंडिका	14	पर	भरोसा	किया
2003	(5)	सप्लिमेंट एससीआर	327	—	कंडिका	14	पर	भरोसा	किया
(1995)	2	पट एलजेआर	690	—	कंडिका	16	पर	भरोसा	किया
2005	(3)	सप्लिमेंट एससीआर	849	—	कंडिका	17	पर	भरोसा	किया

दीवानी अपीलिय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 6265/2013

उच्च न्यायालय पटना द्वारा 21.01.2011 को एलपीए संख्या 477/2009 में पारित निर्णय तथा आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से : मनीष कुमार, गोपाल सिंह।

उत्तरदाता की ओर से : अतुल चितले, सुरेश ईश्वर, आतिशी दीपंकर।

न्यायालय का निर्णय:

1. अनुमति प्रदान की जाती है।

2. 21.1.2011 को उच्च न्यायालय पटना द्वारा एलपीए संख्या 477 of 2009 में पारित आदेश की स्थायित्व-क्षमता, जिसके द्वारा खंडपीठ ने 26.2.2009 को एकल

न्यायाधीश द्वारा सीडब्लूजेसी संख्या 5210 of 2002 में पारित आदेश को उलट दिया और 50% बकाया वेतन तथा पूरा भरण-पोषण भत्ता दो माह के भीतर भुगतान करने तथा कर्मचारी को नोटिस देकर विभागीय कार्यवाही पुनः प्रारम्भ करने का निर्देश दिया था — इन्हीं सभी को बिहार राज्य एवं उसके पदाधिकारियों द्वारा वर्तमान विशेष अनुमति अपील में चुनौती दी गई है।

3. अनावश्यक विवरणों को हटाकर, जिन तथ्यों का उल्लेख किया जाना आवश्यक है, वे इस प्रकार हैं कि प्रतिवादी की नियुक्ति स्मरण-पत्र संख्या 527 दिनांक 27.9.1991 द्वारा प्रधानाध्यापक (शिक्षा सेवा) के रूप में की गयी और उन्होंने 1.10.1991 को सरकारी प्राथमिक विद्यालय, बकुलहार में योगदान किया। जब वह प्रधानाध्यापक के रूप में कार्यरत थे, तो जिला शिक्षा अधीक्षक, बेतिया ने क्षेत्रीय उपनिदेशक (शिक्षा), मुजफ्फरपुर को प्रतिवादी द्वारा अस्तित्वहीन शिक्षकों को वेतन का अवैध भुगतान किए जाने के संबंध में शिकायत भेजी। क्षेत्रीय उपनिदेशक द्वारा दिनांक 18.9.1996 को प्राथमिक शिक्षा निदेशक, पटना, बिहार को यह सूचित करते हुए पत्र भेजा गया कि प्रतिवादी ने उपस्थिति पंजिका में हेरफेर कर तथा झूठी सूचना देकर कोषागार से 35 लाख रुपये अवैध रूप से आहरित किए हैं, अतः आवश्यक कार्रवाई की जाए। सक्षम प्राधिकारी ने 10.10.1996 को विभागीय कार्यवाही प्रारंभ करने तथा अपराधी कर्मचारी के विरुद्ध एफआईआर दर्ज कराने का निर्देश दिया। इसके बाद, जैसा कि तथ्यों से स्पष्ट होता है, एक एफआईआर दर्ज हुई जिससे जीपीएस संख्या 50/1996 का आधार बना, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 409 एवं 420 के अंतर्गत था। प्रतिवादी को 26.5.1997 के आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया और उनके विरुद्ध कुछ आरोपों पर विभागीय कार्यवाही आरम्भ की गयी। प्रतिवादी के निलंबन के समय उनका मुख्यालय जिला शिक्षा पदाधिकारी, पश्चिम चंपारण के कार्यालय में निर्धारित किया गया। प्रतिवादी 3.10.1997 तक मुख्यालय में रहे और उसके बाद वह स्थान छोड़ने के लिए विवश हुए क्योंकि वे धनाभाव के कारण वहां रहने की स्थिति में नहीं थे, चूँकि उन्हें एक वर्ष का वेतन नहीं मिला

था और न ही कोई निर्वाह भत्ता दिया गया था। उन्होंने निर्वाह भत्ता जारी करने हेतु अनेक प्रतिनिधित्व दिए, परंतु प्राधिकारीगण स्फिंक्स जैसी चुप्पी साधे रहे। इसी बीच, आपराधिक मामला चलता रहा और 18.4.2000 के निर्णय द्वारा माननीय विचारण मजिस्ट्रेट द्वारा उन्हें बरी कर दिया गया। प्रतिवादी ने विभागीय कार्यवाही में भाग नहीं लिया, अतः कार्यवाही एकतरफा चलती रही और अंततः जांच प्रतिवेदन के आधार पर 30.9.2000 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने बर्खास्तगी का आदेश पारित किया।

4. बर्खास्तगी आदेश से असंतुष्ट होकर, अपीलकर्ता ने सीडब्लूजेसी संख्या 5210/2002 के रूप में उच्च न्यायालय के असाधारण अधिकारिता क्षेत्र का आह्वान किया। याचिका में यह उल्लेख नहीं था कि उन्होंने विभागीय अपील पहले ही दायर कर दी थी। माननीय एकल न्यायाधीश ने इस पर आपत्ति व्यक्त की और याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए अन्य तर्कों को भी अस्वीकार करते हुए याचिका खारिज कर दी।

5. माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से आक्रोशित होकर, प्रतिवादी ने माननीय खंडपीठ के समक्ष अंतर-न्यायालयिक अपील दायर की। यह तर्क दिया गया कि जब उन्हें आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया था, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को उचित होता कि विभागीय कार्यवाही समाप्त कर देता और आगे न बढ़ाता, क्योंकि आपराधिक मुकदमे और विभागीय कार्यवाही में आरोप समान थे; तथा विभागीय कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के गंभीर उल्लंघन से ग्रसित थी, क्योंकि प्रतिवादी अत्यंत दीन-हीन आर्थिक स्थिति के कारण जांच में भाग लेने की स्थिति में नहीं थे। इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया कि एक वर्ष का देय वेतन उन्हें नहीं दिया गया और निर्वाह भत्ता भी जारी नहीं किया गया। इन तर्कों का राज्य की ओर से कड़ा प्रतिवाद किया गया और यह कहा गया कि आरोप समान नहीं थे, अतः विभागीय जांच का निरंतर रहना और उसके आधार पर बर्खास्तगी आदेश पारित करना विधिसंगत था। यह भी तर्क दिया गया कि प्रतिवादी ने निलंबन आदेश में

वर्णित मुख्यालय में रहने की शर्त का पालन नहीं किया, इसलिए उन्हें निर्वाह भत्ता नहीं दिया गया।

6. खंडपीठ ने पहले प्रतिवाद को स्वीकार नहीं किया, परंतु दूसरे प्रतिवाद में दम पाया और परिणामस्वरूप दंड के आदेश को निरस्त करते हुए प्राधिकारियों को निर्देश दिया कि दो महीनों की अवधि के भीतर 50% वेतन एरियर तथा संपूर्ण निर्वाह भत्ता का भुगतान करें। साथ ही विभाग को यह स्वतंत्रता दी गई कि वह कर्मचारी के विरुद्ध पुनः कार्यवाही प्रारंभ करे और निर्वाह भत्ता के भुगतान की तिथि से छह माह के भीतर उसे पूरा करे। यही आदेश इस अपील में चुनौती का विषय है।

7. हमने राज्य की ओर से अधिवक्ता श्री मनीष कुमार तथा प्रतिवादी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अतुल चिटले की दलीलें सुनी हैं।

8. तथ्यों के अवलोकन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि निर्वाह भत्ता प्रतिवादी को इसलिए नहीं दिया गया क्योंकि वह मुख्यालय में उपस्थित नहीं रहा। उच्च न्यायालय ने यह पाया कि उसने अधिकारियों को अपनी वित्तीय दयनीयता के कारण वहाँ रहने में असमर्थता की सूचना दी थी तथा इस संबंध में कई अभ्यावेदन देने के बावजूद कोई कार्रवाई नहीं की गई। यही खंडपीठ के निर्णय का आधार है।

9. इस चरण पर, इस न्यायालय द्वारा निर्वाह भत्ता के भुगतान तथा उसके अवैतनिक रहने के प्रभाव से संबंधित सिद्धांतों को दोहराना उपयुक्त है। यह विधि में स्थापित है कि निलंबन का आदेश किसी कर्मचारी की सेवा समाप्त नहीं करता। वह केवल वेतन पाने का अधिकारी नहीं रहता, परंतु निर्वाह भत्ता पाने का अधिकारी अवश्य रहता है। *खेम चंद बनाम भारत संघ* (एआईआर 1963 एससी 687) में यह कहा गया है कि निलंबन का प्रभाव यह है कि कर्मचारी सेवा का सदस्य बना रहता है, पर उसे कार्य करने नहीं दिया जाता और केवल

वेतन से कम निर्वाह भत्ता दिया जाता है। इसी सिद्धांत को *मध्य प्रदेश राज्य बनाम महाराष्ट्र राज्य* (एआईआर 1977 एससी 1466) में भी दोहराया गया है।

10. यह उल्लेखनीय है कि निर्वाह भत्ता सेवा नियमों द्वारा नियंत्रित होता है। यह एक निलंबित कर्मचारी को उसके भरण-पोषण के लिए दिया जाता है। यह मूलतः जीवन-निर्वाह के लिए न्यूनतम साधन का प्रावधान है। ओ.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ (एआईआर 1987 एससी 2257) में कहा गया है कि "निर्वाह भत्ता" शब्द का एक दंडात्मक अर्थ भी निहित है, जिसका अर्थ है — जीवन निर्वाह का न्यूनतम साधन। इसके बाद माननीय न्यायाधीशों ने यह भी कहा:

“यह प्राकृतिक न्याय का स्पष्ट सिद्धांत है कि निलंबित कर्मचारी इस बात का प्रतिनिधित्व कर सकता है कि विभागीय कार्यवाही उचित परिश्रम और उचित समयावधि में पूरी की जाए। अन्यथा, कार्यपालिका को अपने कर्मचारियों को अनिश्चितकाल तक संकट और कठिनाई में रखने का मनमाना अधिकार मिल जाएगा।”

11. फकीरभाई फूलाभाई सोलंकी बनाम प्रेसीडिंग ऑफिसर एवं अन्य में, औद्योगिक अधिकरण के समक्ष प्रचलित कार्यवाही के दौरान निर्वाह-भत्ता न दिए जाने पर न्यायालय ने व्यक्त किया कि यदि ऐसी किसी आवेदन के लंबित रहने के दौरान कोई राशि प्रदान नहीं की जाती है तो यह माना जाएगा कि संबंधित कामगार को अधिकरण की कार्यवाही में अपना बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया। ऐसी अस्वीकृति प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों

ए.आई.आर. 1963 उच्चतम न्यायालय 687।

ए.आई.आर. 1977 उच्चतम न्यायालय 1466।

का उल्लंघन करती है और परिणामस्वरूप अधिनियम की धारा 33(3) के तहत अधिकरण की कार्यवाही तथा उन कार्यवाहियों में कामगार के विरुद्ध दिए गए किसी भी निर्णय को दूषित कर देती है।

12. *कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड एवं अन्य* में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जब निर्वाह-भत्ते के भुगतान न होने से उत्पन्न दरिद्रता के कारण कोई कर्मचारी विभागीय कार्यवाही में सम्मिलित होने हेतु यात्रा करने में असमर्थ हो जाता है, तो ऐसी स्थिति में एकतरफा रूप से की गई कार्यवाही में जांच अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्ष निरस्त माने जाएंगे।

13. *जगदम्बा प्रसाद शुक्ल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य* में यह निर्णय दिया गया कि निलंबन अवधि के दौरान नियमों के अनुसार निर्वाह-भत्ते का भुगतान किसी प्रकार की बख्शीश नहीं है। यह एक अधिकार है, और यदि कोई निलंबित कर्मचारी निर्वाह-भत्ता न मिलने के कारण धनाभाव से उपस्थिति दर्ज कराने में असमर्थ होता है, तो यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि उसे विभागीय जांच में अपना बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया गया। अतः ऐसी विभागीय जांच और सेवा से हटाने का आदेश, दोनों ही दोषपूर्ण हो जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि उक्त मामले में कर्मचारी ने अपनी वित्तीय तंगी की सूचना अधिकारियों को दे दी थी।

14. इस संदर्भ में, हम अनवरुन निशा खातून बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2002) 6 एससीसी 703 के दो-न्यायाधीशीय पीठ के निर्णय का लाभप्रद रूप से उल्लेख कर सकते हैं।

3. ए.आई.आर. 1987 उच्चतम न्यायालय 2257।

4. ए.आई.आर. 1986 उच्चतम न्यायालय 1168।

5. ए.आई.आर. 1999 उच्चतम न्यायालय 1416।

उक्त मामले में कर्मचारी ने अपने पति की सम्पूर्ण निलम्बन अवधि के लिए निर्वाह भत्ता का दावा किया था, जिनकी सेवाएँ समाप्त नहीं की गई थीं और विभागीय कार्यवाही लंबित रहने के दौरान उनका निधन हो गया था। पत्नी ने पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की थी, जिसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि अपीलकर्ता के पति केवल एक दिन ही मुख्यालय में उपस्थित थे और इसलिए लाभ पाने के पात्र नहीं थे। इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि बिहार सेवा संहिता के नियम 96(2) के तहत किसी सरकारी सेवक को एक प्रमाणपत्र देना आवश्यक है कि वह किसी अन्य रोजगार, व्यवसाय, पेशा या कार्य में संलग्न नहीं है और चूंकि ऐसा प्रमाणपत्र कभी प्रस्तुत नहीं किया गया, इसलिए निर्वाह भत्ता नहीं दिया गया। बिहार राज्य बनाम गणेश राम (1995) 2 पैट एलजेआर 690 के निर्णय पर भी भरोसा किया गया, जिसमें उच्च न्यायालय ने कहा था कि निलम्बन के बाद कर्मचारी का कार्य पर उपस्थित होना आवश्यक नहीं है। यह भी कहा गया कि निलम्बित कर्मचारी को उपस्थिति दर्ज करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। आगे यह भी कहा गया कि निर्वाह भत्ता भुगतान करने से पूर्व प्राधिकारी स्वयं यह सुनिश्चित करने का अधिकारी है कि निलम्बित कर्मचारी मुख्यालय में उपस्थित है, और विवाद की स्थिति में कर्मचारी को अपनी उपस्थिति साबित करनी होगी। इस न्यायालय ने उक्त निर्णय पर टिप्पणी करते हुए कहा:—

“हमारे विचार में, यह निर्णय प्रतिवादियों की सहायता नहीं करता, बल्कि उनके विरुद्ध जाता है। यह निर्णय दर्शाता है कि उपस्थिति दर्ज करना आवश्यक नहीं है। हमें भी ऐसा कोई नियम नहीं दिखाया गया जिसके अनुसार निलम्बित कर्मचारी को उपस्थिति दर्ज करनी होती है। प्रतिवादी अधिकतम यह मांग कर सकते थे कि अपीलकर्ता का पति यह प्रमाणपत्र दे कि वह किसी अन्य रोजगार, व्यवसाय, पेशा या कार्य में

संलग्न नहीं है। अपीलकर्ता के पति की मृत्यु हो जाने के कारण वह ऐसा प्रमाणपत्र नहीं दे सकते थे। प्रतिवादियों ने किसी भी चरण पर अपीलकर्ता से ऐसा प्रमाणपत्र माँगा भी नहीं। अतः केवल प्रमाणपत्र न दिए जाने के आधार पर निर्वाह भत्ता रोका नहीं जा सकता।”

इस प्रकार यह निर्देश दिया गया कि कर्मचारी की पत्नी जब यह हलफनामा दायर कर देगी कि उसका पति किसी अन्य रोजगार, व्यवसाय, पेशा या कार्य में संलग्न नहीं था, तो निर्वाह भत्ता उसके पक्ष में जारी किया जाएगा।

15. उपर्युक्त प्राधिकार से यह दिन के उजाले की भाँति स्पष्ट है कि मुख्यालय में उपस्थिति नियम के तहत आवश्यक नहीं थी। वर्तमान मामले में भी कोई ऐसा नियम नहीं है जिसके अनुसार निलम्बित कर्मचारी को निर्वाह भत्ता पाने के लिए मुख्यालय में बने रहना आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त, जैसा कि स्पष्ट है, प्रतिवादी ने अपनी आर्थिक स्थिति तथा मुख्यालय में रहने में असमर्थता को स्पष्ट रूप से बताया था। राज्य के अधिकारियों का यह कहना भी नहीं है कि उनसे किसी प्रमाणपत्र की माँग की गई हो और उन्होंने उसे प्रस्तुत न किया हो। पूरा मामला केवल इस तथ्य पर आधारित था कि प्रतिवादी-कर्मचारी मुख्यालय में नहीं रहा, इसलिए निर्वाह भत्ता नहीं दिया गया।

16. इस मोड़ पर, हम दो प्राधिकारों का उल्लेख कर सकते हैं जो *भत्ता-भरण* के *अभुगतान* के प्रभाव से संबंधित हैं। *इंद्रा भानु गौड़ बनाम एम.एम. डिग्री कॉलेज की मैनेजमेंट कमेटी एवं अन्य* में यह निर्णय दिया गया है कि जब तक *पूर्वाग्रह* दिखाया और सिद्ध नहीं किया जाता, केवल भत्ता-भरण का न दिया जाना अपने-आप में किसी भी मामले में कार्यवाही को

6. ए.आई.आर. 2000 उच्चतम न्यायालय 2806।

7. (2002) 6 उच्चतम न्यायालय वाद 103।

8. 1995 (2) पटना विधि पत्रिका निर्णय 690।

निष्प्रभावी करने का आधार नहीं हो सकता। यह विशेष रूप से विनिर्दिष्ट और स्थापित किया जाना चाहिए कि भत्ता-भरण न मिलने के कारण प्रभावित कर्मचारी किस प्रकार असमर्थ हुआ। जब तक ऐसा नहीं किया जाता, यह कानून का पूर्ण और निर्विवाद सिद्धांत नहीं हो सकता कि भत्ता-भरण का अभुगतान न होना अवसर के निषेध के समान है और विभागीय कार्यवाही को निरस्त कर देता है।

17. यू.पी. स्टेट टेक्सटाइल कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम पी.सी. चतुर्वेदी एवं अन्य में, दो-न्यायाधीश पीठ ने उपर्युक्त इंद्रा भानु गौड़ (उपरोक्त) पर भरोसा करते हुए इस प्रकार प्रतिपादित किया:

“जहाँ तक भत्ता-भरण के भुगतान न किए जाने के प्रभाव का प्रश्न है, प्राधिकारों के समक्ष प्रतिवादी-1 कर्मचारी ने यह कोई आग्रह नहीं किया कि भत्ता-भरण न मिलने के कारण वह कार्यवाही में भाग लेने की स्थिति में नहीं था, अथवा इससे उसे कार्यवाही का प्रभावी प्रतिरक्षण करने में कोई अन्य पूर्वाग्रह हुआ। उसने यह भी न तो कहा और न सिद्ध किया कि भत्ता-भरण का न भुगतान जानबूझकर या दुर्भावना से किया गया। अंततः यह पूर्वाग्रह का प्रश्न है। जब तक पूर्वाग्रह दिखाया और सिद्ध नहीं किया जाता, केवल भत्ता-भरण का न दिया जाना अपने-आप में हर मामले में कार्यवाही को निष्प्रभावी करने का आधार नहीं हो सकता। यह विशिष्ट रूप से कहा और दिखाया जाना चाहिए कि भत्ता-भरण न मिलने से प्रभावित कर्मचारी किस प्रकार असमर्थ हुआ। बिना इसके, यह नहीं माना जा सकता कि भत्ता-भरण का न दिया जाना अवसर के निषेध के समान है और विभागीय कार्यवाही को निरस्त करता है।”

9. (2004) 1 उच्चतम न्यायालय वाद 281।

10. (2005) 8 उच्चतम न्यायालय वाद 211।

18. उपर्युक्त प्राधिकारों का हमने उल्लेख किया है क्योंकि *पूर्वाग्रह का सिद्धांत* भत्ता-भरण के अभुगतान से जुड़ा हुआ है। हमें इस सिद्धांत की पूर्णता पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। हम केवल यह कहना चाहते हैं कि यह नियमों में निहित प्रावधानों तथा मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। हम शीघ्रता से स्पष्ट करते हैं कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गए नियम सदैव उनकी संवैधानिक वैधता के अधीन होते हैं। वर्तमान मामले में तथ्य स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि प्रतिवादी को जो वेतन देय था, वह *अप्रत्याशित कारणों* से नहीं दिया गया। भत्ता-भरण इस एकमात्र आधार पर नहीं दिया गया कि वह निलंबन आदेश में दिए गए मुख्यालय में नहीं रहा। प्रतिवादी ने मुख्यालय में रहने और विभागीय कार्यवाही में भाग लेने हेतु अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति के बारे में अनेक अभ्यावेदन दिए थे। नियमों में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि निलंबित कर्मचारी को भत्ता-भरण पाने हेतु मुख्यालय में रहना आवश्यक है। अतः, वर्तमान मामले में, यदि *पूर्वाग्रह सिद्धांत* लागू भी किया जाए, तो यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी विभागीय कार्यवाही में भाग लेने के लिए बिल्कुल असमर्थ था और इसलिए *पूर्वाग्रह* हुआ। ऐसी स्थिति में, दंड-आदेश को रद्द करने के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष में हमें कोई त्रुटि नहीं मिलती। जहाँ तक उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों का संबंध है, राज्य के अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि 1.1.1996 से लेकर निलंबन की तिथि अर्थात् 26.6.1997 तक पूरा वेतन नहीं दिया गया, और इसलिए इस वेतन के भुगतान का निर्देश त्रुटिपूर्ण नहीं है। भत्ता-भरण 25.6.1997 से 13.9.2000 की अवधि के लिए वेतन के 50% की दर से देना होगा। प्रतिवादी के अधिवक्ता श्री चितले ने कहा कि वह 13.9.2000 से उच्च न्यायालय के आदेश की तिथि तक के भत्ता-भरण के दावे को ₹1,00,000/- (रुपये एक लाख) तक सीमित करते हैं। उक्त राशि की गणना कर छः *सप्ताह* के भीतर प्रतिवादी को दी जाएगी। हम स्पष्ट करते हैं कि उच्च न्यायालय के आदेश के बाद की अवधि को विभागीय कार्यवाही की समाप्ति तक *निलंबन*

अवधि माना जाएगा और भत्ता-भरण नियमों के अनुसार दिया जाएगा। राशि जारी होने के बाद विभागीय जांच प्रारंभ होगी और तीन माह के भीतर समाप्त की जाएगी।

19. उपर्युक्त संशोधनों के साथ, उच्च न्यायालय का आदेश यथावत रहता है। अपील बिना व्यय-व्यय के निस्तारित की जाती है।

कल्पना के. त्रिपाठी

अपील निस्तारित की जाती है।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।